THE TIMES OF INDIA

Date: 09-12-16

Equality Comes First

Calling triple talaq unconstitutional, Allahabad high court boosts women's rights

In a boost to the case against triple talaq, the Allahabad high court has observed that the practice of instant divorce is unconstitutional and violates the rights of Muslim women. The court further emphasised that no personal law board is above the Constitution and hence personal laws of any community cannot claim supremacy over constitutional rights granted to individuals. This is a welcome observation that upholds the principle of equality and gender justice.

It will be recalled that the Supreme Court is currently seized with a bunch of petitions challenging the validity of triple talaq and other Islamic practices related to marriage like nikah halala and polygamy. In fact, the central government has already submitted before the apex court its opinion that triple talaq violates the fundamental rights guaranteed by the Constitution and that the issue needs to be considered in light of gender justice and non-discrimination. There's no denying that the practice of triple talaq in India has taken ridiculous forms with women being divorced through postcards and SMSes. Given that religious orthodoxy insists that only men enjoy the right of divorce, triple talaq leaves Muslim women extremely vulnerable

.In such a scenario, the law needs to be on the side of the exploited. Besides, triple talaq as practised by the Muslim community in India isn't observed in many Muslim-majority nations. In fact, triple talaq has been banned in more than 20 Muslim-majority countries, including Pakistan and Bangladesh. Hence, contrary to the claim of the All India Muslim Personal Law Board, the practice isn't essential to Islam. Neither does it enjoy universal acceptance since most petitioners against triple talaq are Muslim women. Thus, the Allahabad high court observation should encourage the petitioners and hopefully pave the way for their victory in the Supreme Court.

Date: 09-12-16

संसद में हंगामे पर सांसदों को राष्ट्रपति की नसीहत

पांच सौ और हजार रुपए के पुराने नोट वापस लिए जाने को एक महीना हो गया है, लेकिन परिदृश्य में कोई खास बदलाव नहीं आया है। संसद के भीतर शोर-गुल है, बाहर वही नेता विरोध प्रदर्शनों में लगे हैं और एटीएम के सामने लंबी कतारें लगी हैं। संसद में सार्थक बहस होती तो शायद कोई रास्ता निकलता, स्थिति में सुधार होता और आम जनता को राहत मिलती। विपक्ष चाहे जनता का हिमायती बनने का दिखावा कर रहा हो, लेकिन लोगों को राहत दिलाने के संसदीय तरीके में लगता है उसका उतना भरोसा नहीं है। यही वजह है कि रक्षा प्रतिष्ठान दिवस पर 'मजबूत लोकतंत्र की दिशा में सुधार' विषय पर बोलते हुए राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने सांसदों से सख्त लहजे में अपील की कि ईश्वर के लिए अपना काम कीजिए।

ऐसा व्यवहार पूरी तरह अस्वीकार्य है। धरना और प्रदर्शन तो संसद के बाहर भी किए जा सकते हैं। किंतु इस बात के आसार नहीं है कि उनकी इस फटकार का हमारे जनप्रतिनिधियों पर कुछ असर होगा। सुप्रीम कोर्ट की तरह राष्ट्रपति को राष्ट्र की चेतना का प्रहरी माना जाता है और अपने भाषण में मुखर्जी ने यही दायित्व निभाया है। उनकी यह चिंता जायज है कि संसदीय कार्यवाही में बाधा पहुंचाना परम्परा-सी बन गई है। विपक्ष में रहते हुए भाजपा ने 2-जी घोटाले के मुद्दे पर यही किया था। इस वजह से 15वीं लोकसभा सबसे कम उत्पादक मानी गई थी। अब कांग्रेस व अन्य दल उसी राह पर चल रहे हैं। यह सही है कि संसदीय व्यवहार का यह भी तरीका है व इसे पूरी तरह खत्म नहीं किया जा सकता। लेकिन इसे न्यूनतम करके इसे सार्थक बनाया जा सकता है।

सत्ता में आने के बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने संसद की दहलीज पर सिर नवाकर लोकतंत्र के मंदिर के प्रति सम्मान प्रकट किया था, लेकिन इन ढाई वर्षों में वे बहुत उदासीन सांसद साबित हुए हैं। बहुत कम मौकों पर उन्होंने हस्तक्षेप किया है और इसमें भी स्वत:स्फूर्त व बिना लिखे वक्तव्य दुर्लभ ही रहे हैं। उन्हें अटल बिहारी वाजपेयी से सबक लेना चाहिए, जो संसदीय बहस के सवाल-जवाब में बहुत रुचि लेकर हस्तक्षेप करते रहते थे। जब ऐसा नेतृत्व न हो तो विपक्ष को गैर-जवाबदार होने को और प्रोत्साहन मिलता है। उम्मीद है राष्ट्रपति की हिदायतों पर दोनों पक्ष ध्यान देकर शेष सत्र में कुछ उत्पादक कार्यों को अंजाम देंगे।

Date: 09-12-16

हिंदी सिनेमा से जयललिता जैसा नेता क्यों नहीं?

सांसद के रूप में अभिनेता गोविंदा संसद में उपस्थिति के सबसे खराब रिकॉर्ड वाले सदस्यों में रहे हैं। अपने पूरे कार्यकाल में वे लोकसभा की कुल बैठकों में से दस फीसदी से भी कम में मौजूद रहे और दो मिनट से भी कम बोले। जब एक वरिष्ठ कांग्रेस नेता ने उन्हें सदन की कार्यवाही में अधिक सहभागी होने का सुझाव दिया तो उनका जवाब था कि वे फिल्म की शूटिंग में व्यस्त थे। 'फिल्में मेरी रोजी-रोटी हैं, राजनीति नहीं।'

गोविंदा अकेले नहीं हैं। भारतीय राजनीति में ऐसे सेलेब्रेटी सिने कलाकारों की कमी नहीं हैं, जिन्होंने लोक-जीवन में अपनी भूमिका को दीर्घावधि प्रतिबद्धता की बजाय अस्थायी शौक की तरह लिया। चुने जाने के लिए उन्होंने अपने स्टार पावर का इस्तेमाल किया (या राज्यसभा के लिए चुने गए), लेकिन राजनीतिक पद को जनता के प्रति कर्तव्य की तरह लेने की बजाय अवॉर्ड की तरह लिया। चाहे बोफोर्स विवाद के बीच राजनीति छोड़ने वाले हिंदी सिनेमा के महानायक अमिताभ बच्चन हों या रामायण सीरियल में सीता की भूमिका निभाकर सांसद बनीं दीपिका चिखलिया हों, सितारा राजनेताओं की सूची बहुत प्रभावित नहीं करती। यही वजह है कि जे. जयललिता देश में अब तक की सबसे सफल सितारा-राजनेता हैं। केवल दो ही अन्य ऐसे नेता हैं, जो इस श्रेणी के दावेदार हैं- एमजी रामचंद्रन और एनटी रामा राव। एमजीआर तमिल सिनेमा के मूल लोक-नायक थे, जो बड़ी राजनीतिक शख्सियत बनें। जयललिता के मेंटर के रूप में यह कहना गलत न होगा कि एमजीआर के बिना जयललिता नहीं होतीं। एमजीआर के आभामंडल ने ही एआईएडीएमके को शुरुआती वर्षों में कायम रखा और ऐसा पार्टी का ऐसा मजबूत ढांचा तैयार किया, जिस पर जयललिता ने आगे निर्माण किया। एनटीआर भी तेलुगु सिनेमा और राजनीति के कद्दावर शख्सियत थे। अपने पहले चुनाव में ही वे नाटकीय रूप से सत्ता में आ गए।

तमिल और अन्य भाषाओं की 120 फिल्मों में अभिनय करने वाली जयललिता, एमजीआर-एनटीआर श्रेणी की मेगास्टार नहीं थीं और फिर भी वे इन दोनों से राजनीति में ज्यादा टिकाऊ साबित हुईं। एमजीआर को उनके व्यक्तित्व पर आधारित प्रचार-तंत्र का फायदा मिला, जिसका एकमात्र उद्देश्य देवता की उनकी छवि गढ़ना था। फिल्मों में उनकी भूमिकाएं भी ऐसी रची जाती थी कि एमजीआर आम आदमी के पौराणिक मसीहा बनकर उभरें। जयललिता को ऐसा कोई फायदा नहीं मिला। अन्य अभिनेत्रियों की तरह उनका सिनेमाई व्यक्तित्व सुंदर हीरोइन का था, इससे अधिक कुछ नहीं।

एनटीआर को भी परदे पर देवताओं जैसी निभाई विभिन्न भूमिकाओं का फायदा मिला। उनके समर्थक उन्हें सिनेमाई छवि का वास्तविक अवतार समझते थे। इससे वोट खींचना उनके लिए काफी हद तक आसान हो जाता था। कई बार वे जनसभाओं में भी सिनेमाई भूमिकाओं वाली पोशाक में पहुंच जाते थे। जाहिर है यह सिनेमा और राजनीति की विभाजन रेखा को धुंधला करने का प्रयास होता था। जयललिता ने सोच-समझकर ऐसा कुछ कभी नहीं किया, लेकिन यह जरूर है कि हर प्रमुख चुनाव के पूर्व पुरानी एमजीआर-जया की रोमांटिक फिल्में जया टीवी पर प्रसारित की जाती थी। जयललिता को एमजीआर और एनटीआर दोनों से अधिक श्रेय है, क्योंकि उन्हें राजनीति में कामयाबी के लिए उतना अधिक संघर्ष करना पड़ा। उन्हें कोई विशेष फायदा नहीं मिला बल्कि शुरुआती दिनों में तो उन्हें एकाधिक बार लैंगिक भेदभाव और पूर्वग्रहों का शिकार बनाया गया। उन्हें 'बाहरी' समझा गया, पार्टी के मामलों में दखल देने वाली ऐसी महिला, जिसका एमडीआर की विरासत पर कोई हक नहीं है। इसके बाद भी वे सफल रहीं तो इसका श्रेय एआईएडीएमके कार्यकर्ताओं और अंतत: तमिलनाडु की जनता के साथ तालमेल स्थापित करने के उनके प्रयासों को है। वे रातोरात अम्मा नहीं बन गईं, जैसे एमजीआर लगभग तत्काल पुरात्ची थलाईवार यानी क्रांतिकारी नेता करार दे दिए गए थे। जयललिता को बहुत सारे गरीब कल्याण कार्यक्रमों के जरिये दयालू मातृ-सत्ता की प्रतिष्ठा निर्मित करनी पड़ी, जिसने अंतत: उन्हें 'अम्मा' की छवि दी, सबकुछ देने वाली मां।

भ्रष्टाचार के गंभीर आरोपों में जेल भेजे जाने से भी वे उबर गईं, यह उनकी हर विपरीत स्थिति को मात देकर उबरने की क्षमता दर्शाता है। अपने झक्की स्वभाव और तानाशाही रवैये के बाद भी जनता से उनका संपर्क कभी नहीं टूटा। यह लोगों में उनके आकर्षण का सबूत है। यही पर अन्य सितारा राजनेताओं के लिए सबक है, जिनमें से ज्यादातर अपनी आरामदेह निजी जिंदगी में सुकून महसूस करते हैं और वे वह त्याग करने के इच्छुक नहीं होते, जिसकी सार्वजनिक जीवन का कॅरिअर मांग करता है। जयललिता ने जल्दी ही समझ लिया कि राजनीति चौबीस घंटे, सातों दिन का पेशा है, सत्ता का शॉर्टकट नहीं होता और यदि उन्हें सत्ता बनाए रखनी हैं तो उन्हें वादे पूरे करने होंगे। जहां उन पर खुद की समृद्धि, सत्ता और महत्व बढ़ाने का आरोप लगाया जा सकता है वहीं, उनकी प्रशासनिक दक्षता पर उंगली नहीं उठाई जा सकती। प्राय:

लोकलुभावन प्रयासों के रूप में खारिज कर दी गईं उनकी मुफ्त योजनाएं वास्तव में ऐसा सुरक्षित मतदाता वर्ग तैयार करने पर केंद्रित थीं, जो उनकी सितारा हैसियत के परे उन्हें देख सके।

खेद है कि ज्यादातर फिल्मस्टार राजनेताओं ने, खासतौर पर हिंदी सिनेमा के सितारा नेताओं ने मतदाताओं को गंभीरता से नहीं लिया, इस गलतफहमी में कि समाज के प्रति उनका कोई कर्तव्य नहीं है। उनकी सितारा हैसियत उन्हें असली दुनिया से काट देती है और आमतौर पर उन्हें सार्वजनिक जीवन के लायक नहीं छोड़ती। शाबाना आजमी जैसे अपवाद छोड़ दें तो कितने ऐसे हिंदी फिल्म सितारें हैं, जिन्होंने सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों को लिए वक्त दिया हो? यही वजह है कि जयललिता जैसा बॉलीवुड में कोई दिखाई देने में वक्त लगेगा- जिंदगी की पहली पारी में करिश्माई स्टार, लेकिन दूसरी पारी में एक असली राजनेता।

पुनश्च: 2011 में मैं रस्किन बांड लिखित जयललिता की प्रिय किताब के साथ उनका इंटरव्यू लेने गया। असली पुस्तक-प्रेमी की तरह उन्होंने किताब के लिए तो धन्यवाद दिया, लेकिन इंटरव्यू का अनुरोध खारिज कर दिया। उन्होंने अपने खास दंभपूर्ण तिरस्कार में कहा, 'मुझे काम करना है और इंटरव्यू इसमें व्यवधान होते हैं।' वही हमारी संक्षिप्त मुलाकात का अंत था।

राजदीप सरदेसाई, वरिष्ठ पत्रकार (ये लेखक के अपने विचार हैं)

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 09-12-16

नोटबंदी और जीएसटी मिलकर करेंगे चोट

एकसमान कर प्रणाली के रूप में प्रस्तावित जीएसटी का जो प्रारूप दिख रहा है उससे कर ढांचे में काले धन के सृजन की स्थिति में सुधार की संभावना कम ही दिख रही है। बता रहे हैं सुकुमार मुखोपाध्याय

नोटबंदी के असर के बारे में तस्वीर साफ होने पर हम काले धन और उत्पाद एवं सेवा कर (जीएसटी) के साथ उसके रिश्ते के बारे में आकलन कर सकते हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों का कहना है कि नोटबंदी का कदम जीएसटी के बराबर काले धन पर लगाम लगाने में उतना असरदार साबित नहीं होगा। इस लेख में हम इस धारणा के तमाम पहलुओं पर गौर करेंगे। सबसे पहले हमें यह ध्यान रखना होगा कि जीएसटी अप्रत्यक्ष करों से ताल्लुक रखता है और इन करों की चोरी से काले धन का सृजन होता है। आयकर वंचना और रियल एस्टेट में होने वाले 'काले' सौदे काले धन के अन्य स्रोतों में शामिल हैं। इस पृष्ठभूमि में हमें इस पर गौर करना होगा कि जीएसटी के प्रस्तावित प्रारूप में काला धन बनाने की कितनी संभावना बाकी रह गई है। प्रस्तावित कर प्रणाली में 5, 12, 18 और 28 फीसदी की कर दरें रखी गई हैं। अगर वस्तुओं एवं सेवाओं को सही तरह से वर्गीकृत किया जाता है तो 5 फीसदी और 28 फीसदी के स्तर को लेकर विवाद की खास गुंजाइश नहीं रहेगी। लेकिन 12 फीसदी और 18 फीसदी के कर ढांचे में शामिल उत्पादों एवं सेवाओं को लेकर तीव्र विवाद पैदा होने की आशंका है।

मैंने इन दोनों कर ढांचों के बजाय 16 फीसदी का एक ही स्तर रखने का सुझाव दिया था। उससे भी सरकार को समान राजस्व ही मिलता और उसे परिभाषित करना भी आसान होता। इसके बारे में कहा जा सकता था कि 5 फीसदी और 28 फीसदी की सूची से बाहर की सभी सेवाओं और उत्पादों को इसमें रखा जा रहा है। लेकिन ऐसा नहीं किया गया है। ऐसा लगता है कि राज्य सरकारों के दबाव के चलते यह कर दर लागू नहीं हो पाई। बात जो भी हो, अब तो मध्यम स्तर वाली कर दरों को 12 और 18 फीसदी के स्तर पर निर्धारित किया जा चुका है और करदाता

ऐसे तरीके निकालने की कोशिश करेंगे कि कम-से-कम भुगतान करना पड़े। शुल्क दरों को जटिल बनाने के इरादे से कुछ सलाहकार सरकार को सीसीसीएन लागू करने का भी सुझाव दे सकते हैं। एक वरिष्ठ अधिवक्ता ने तो इस सिलसिले में कोशिश शुरू भी कर दी है। अगर वह अपने अभियान में कामयाब होते हैं तो बड़े नोटों को चलन से बाहर किए जाने के फैसले को लेकर चल रहे सारे विवाद एक बार फिर सिर उठाने लगेंगे। इसके साथ ही भ्रष्टाचार का मौजूदा स्तर भी दोबारा दस्तक देता हुआ नजर आएगा। निष्कर्षत: कह सकते हैं कि जीएसटी के ढांचे को जिस तरह से तैयार किया गया है उसमें मौजूदा कर प्रणाली की ही तरह काले धन के सृजन की प्रबल संभावना है।

इसके साथ ही हमें इसका भी अहसास होना चाहिए कि दुनिया भर में जिन देशों में भी जीएसटी प्रणाली लागू है वहां पर कर चोरी कोई असामान्य बात नहीं है। यह बात गरीब देशों के साथ ही यूरोपीय देशों पर भी उतनी ही लागू होती है। किसी भी अन्य कर की तरह मूल्य संवर्द्धित कर (वैट) में भी धोखाधड़ी और कर चोरी की पर्याप्त संभावनाएं रही हैं। खुदरा बिक्री कर (आरएसटी) और टर्नओवर टैक्स जैसे अन्य करों के मामले में भी कर वंचना के विभिन्न तरीके देखे जाते हैं। हालांकि करों में गड़बड़ी के कुछ तरीके तो खासकर वैट से ही जुड़े हुए हैं। कर भुगतान संबंधी इनपुट क्रेडिट सिस्टम ऐसा ही एक तरीका है। बड़े पैमाने पर कर से बचने वाले कारोबारी कर चोरी करते हैं। यूरोपीय संघ और अन्य स्थानों पर वैट के पुनर्भुगतान प्रावधानों से की जाने वाली भारी गड़बड़ी आज के समय में गहरी चिंता का विषय बन चुका है।

वैट के मामले में अलग-अलग तरह से की जा रही कर वंचना बेहद गंभीर समस्या बन चुकी है। हालत यह हो गई है कि अब शायद ही वैट को उतनी गंभीरता से लेता है जबकि पहले वैट को खुद ही अपनी भूल सुधार लेने वाला और स्व-प्रवर्तनीय माना जाता रहा है। समृद्ध देश नीदरलैंड में वर्ष 1976 में एक अध्ययन में पाया गया था कि कर वंचना के 77,000 मामलों में से 45,000 में कर चोरी के एवज में अतिरिक्त राशि मांगी गई थी जो उस वर्ष के कुल राजस्व के 2 फीसदी के बराबर थी। उस रिपोर्ट के मुताबिक खुदरा स्तर पर इस तरह की गड़बड़ी लगातार होती थी लेकिन उसमें शामिल राजस्व की मात्रा कम होती थी। रिपोर्ट में कहा गया था कि अगर सभी रिटर्न का ऑडिट किया जाए तो कुल राजस्व की 5.5 फीसदी राशि जुटाई जा सकती है। इस उदाहरण के आधार पर कहा जा सकता है कि जीएसटी भी पूरी तरह कर-वंचना से मुक्त नहीं होगा और काले धन का सृजन होना बदस्तूर जारी रहेगा। काले धन का प्रवाह तो नहीं रुकेगा लेकिन इतना जरूर है कि नोटबंदी के जरिये काले धन पर अचानक चोट करना एक अच्छा कदम है। एक बार फिर मैं यहां दोहराना चाहूंगा कि अगर जीएसटी की दरों को 5,16 और 28 फीसदी के स्तर पर रखा गया तो मामूली अपवादों को छोड़कर कारोबार में काले धन का प्रवाह काफी कम हो जाता।

निष्कर्ष यह है कि जीएसटी नोटबंदी का विकल्प नहीं है। अप्रत्यक्ष कर की चोरी को रोककर यह काले धन को खत्म करने में नोटबंदी का एक सहयोगी हो सकता है। हमें ध्यान रखना होगा कि जीएसटी का असर उस काले धन पर नहीं होगा जो आयकर और रियल एस्टेट में शुल्क की चोरी से पैदा होता है। जीएसटी का मकसद अखिल भारतीय बाजार पैदा करने के साथ ही कारोबारी सहूलियत को भी बढ़ाना है। इससे अधिक संख्या में लोग स्वेच्छा से कर भुगतान के लिए आगे आएंगे जिससे राजस्व संग्रह में बढ़ोतरी होगी और टैक्स-जीडीपी अनुपात और विकास में भी वृद्धि देखने को मिलेगी।

यह कहना गलत होगा कि जीएसटी काले धन के खिलाफ संघर्ष में नोटबंदी से बेहतर कदम होगा। असल में ये दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं, न कि स्थानापन्न। नोटबंदी काले धन के भंडार पर चोट करता है जबकि जीएसटी इसके प्रवाह को रोकता है। अकेला होने पर इनमें से कोई भी असरदार नहीं रह जाएगा लेकिन अगर दोनों एक साथ अमल में लाए गए तो असर काफी गहरा होगा।

(लेखक केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क बोर्ड के पूर्व सदस्य हैं)

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 08-12-16

The colour of polls

PM's move against black money prepares the ground for reforms of electoral finance.

A series of new and dramatic developments have brought centre-stage the long discussed — and long evaded — subject of electoral reforms.It all started with the prime minister calling for the need for simultaneous elections in view of the overwhelming costs and dislocations of normal life. As the debate on this issue was still hotting up, he came up with the surprise announcement of demonetisation of currency notes of Rs 1,000 and Rs 500 denominations. While his stated objective was to root out the monster of black money from the economy, many critics saw in it an attempt to turn into junk the sackfuls of currency notes with the Opposition parties. I, for one, find it a great move as far as the role of black money in elections is concerned.All political parties use black money to finance their campaigns and to bribe voters. Earlier, it used to be just a few days before the elections, but ever since the Election Commission of India (ECI) put together expenditure control mechanisms in 2010, followed by a crackdown on unaccounted money as soon as the model code comes into play, political parties changed their strategy and advanced the activity by a few weeks. Since elections to five state assemblies are round the corner, this is the time when the money would have been moving. The exact impact, however, would be known during and after the elections.

Some subsequent developments, even if not originally intended, also have a bearing on electoral reforms. After demonetisation threw up huge logistical challenges, the government's campaigns to promote e-banking, e-wallet etc have come on everybody's lips. This, again, is a positive development. When even a rickshaw puller or vegetable seller is told to stop cash transactions, the exemption of donations to political parties below Rs 20,000 from the "by cheque only" regulation must also be dispensed with straight away. This will take care of the non-transparency of 80 per cent of political funding which all political parties have shown as cash donations. This amounts to an average Rs 1,000 crore per year.The third development is the PM's directive to his party legislators to disclose all their bank transactions since November 8. Many questions were raised. My reaction is that instead of criticising it and suggesting what the PM could have done better, why not welcome it as a first positive step towards the financial transparency of politicians? Another great move of the government is to pass an Act to curb benami property deals and the subsequent crackdown. This should also have a salutary effect on the black money in elections.

In the context of these developments, one report came as a shock. This was the law ministry rejecting the ECI's proposal to give it permanent legal powers to countermand polls on credible evidence of the use of black money.The ECI has been deeply concerned about the use of black money in elections. It has repeatedly written to the government, suggesting electoral reforms for the last two decades. On its part, the ECI has been doing its best. The setting up of the expenditure monitoring division in 2010 in the commission was a milestone in its efforts to challenge the abuse of money in elections. Stringent guidelines, and strict enforcement, led to the seizure of hundreds of crores of rupees and put some fear of god in the hearts of the profligate politicians. Our proactive steps led to some landmark achievements, including the unseating and disqualification of a sitting MLA, Umlesh Yadav, in UP for improper declaration of election expenses and paid news. Another was the countermanding of two elections to the Rajya Sabha in Jharkhand in 2012 to stop the "horse trading" that had

become rampant in many Rajya Sabha elections. The Jharkhand High Court upheld this as the most decisive step against corruption and even fined the petitioner Rs 1 lakh. Recently, the ECI took an unprecedented step to cancel elections to two Tamil Nadu assembly seats, namely Aravakurichi and Thanjavur.In this context, the government's rejection a week ago — the second in two months — of the ECI's proposal to give it permanent powers to cancel elections on credible evidence of abuse of money was indeed a surprise as it goes against the prime minister's avowed war against black money. My charitable interpretation is that this rejection had actually come without the knowledge of the PM. I am sanguine that if the ECI refers the case back to the law ministry, they would not have the moral authority to reject it now.

The most explicit development is the PM's expression of concern, in his address to the party MPs on the eve of the winter session of Parliament, about the need for electoral reform. It seems the time is ripe for it. He should immediately review all the proposals of the ECI.What reforms are we looking for? I recapitulate below, briefly, just the political finance reforms: One, prescribe a ceiling for political parties' expenditure, like that for the candidates. Two, consider state funding of political parties (not elections) with independent audit and a complete ban on private donations. Three, enforce internal democracy and transparency in the working of the political parties. Bring them under the RTI. Four, set up an independent national election fund where all tax-free donations could be made. It could be operated by the ECI or any other independent body.Five, accept the ECI's proposal to legally empower it to cancel elections where credible evidence of abuse of money has been found. Six, debar persons against whom cases of heinous offences are pending in courts from contesting elections. Seven, empower the ECI to de-register those political parties which have not contested any election for 10 years and yet benefited from tax exemptions. Eight, make paid news an electoral offence with two years' imprisonment by declaring it a "corrupt practice" (Sec 100 RP Act) and "undue influence" (Sec 123(2)).

In December 2015, the ECI had organised a conference of SAARC countries in collaboration with the International Institute of Democracy and Electoral Assistance-IDEA on the scourge of money power in elections. The conference adopted a historic New Delhi Declaration laying down the guiding principles of transparency of electoral finance. Member countries of the region and IDEA are trying to get this declaration widely accepted. India, considered a gold standard of elections, has a moral responsibility to lead from the front. Over to you, prime minister!

The writer is former CEC and author of 'An Undocumented Wonder — The Making of the Great Indian Election'.

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 08-12-16

हमारी धरती के लिए यह बहुत खतरनाक समय है

कैंब्रिज के एक भौतिक शास्त्री के रूप में मुझे खासा विशेषाधिकार मिले हुए हैं। विश्वविख्यात विश्वविद्यालय के कारण इस शहर को भी एक खास दर्जा हासिल है। यहां की वैज्ञानिक बिरादरी भी अपने आप में उच्च नैतिक और बौद्धिक मूल्यों वाली है, जिसका हिस्सा बनने का मौका मुझे मेरी युवावस्था की शुरुआत में ही मिल गया। यह भी इसी बिरादरी के एक समूह का सच है कि वह गाहे-बगाहे खुद को किसी शिखर से कम नहीं समझता और मुगालते में रहता है। एक भौतिक शास्त्री के रूप मैंने काफी समय इनके साथ बिताया है। यहां कहना पड़ता है कि मेरी किताबों से मुझे मिला सेलेब्रिटी का दर्जा हो या बीमारी से मिला अकेलापन, मुझे यही लगता कि मेरा कल्पना-लोक पहले से ज्यादा विशाल होता जा रहा है।

अमेरिका और ब्रिटेन के उदाहरण सामने हैं। दोनों ही देशों में कुलीन वर्ग का अस्वीकार किसी और के लिए कुछ भी हो, मुझे अपने करीब लगता है। ब्रिटेन के यूरोपीय संघ की सदस्यता से इनकार का मामला हो या अमेरिकियों का डोनाल्ड ट्रंप को गले लगाना, कोई संदेह नहीं कि इसके पीछे नेतृत्व की ओर से मिली उपेक्षा के कारण पनपी नाराजगी रही होगी। इस बात से तो सब सहमत होंगे कि यह वही क्षण होते हैं, जब उपेक्षित लोग भी कुलीनों को नकारने के लिए खड़े हो जाते हैं। अब इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि ब्रेग्जिट या ट्रंप की जीत पर अभिजन क्या और कैसे रिएक्ट करता है।

भूमंडलीकरण के आर्थिक असर और तेजी से चल रहे प्रौद्योगिक परिवर्तन को लेकर चिंताएं समझी जा सकती हैं। तकनीक के बढ़ते प्रयोग ने पारंपरिक उद्योगों में रोजगार के अवसर पहले ही सीमित कर दिए हैं। हम उस विश्व में रह रहे हैं, जहां आर्थिक खाई लगातार बढ़ रही है। एक ऐसा विश्व, जहां लोग स्टैंडर्ड ऑफ लिविंग की बात भूलकर यह सोचें कि उनके जीवकोपार्जन के रास्ते बंद होते जा रहे हैं। ऐसे में, इस बात पर आश्चर्य क्यों हो कि वे जिस नए की तलाश कर रहे हैं, ट्रंप और ब्रेग्जिट उसे उसके असली प्रतिनिधि दिखाई देते हैं।

यह इंटरनेट और सोशल मीडिया के वैश्वीकरण के उस अनचाहे असर का प्रतिफल भी है, जिसने अतीत की अपेक्षा सब कुछ जस का तस सामने दिखा दिया है। मेरे लिए संवाद की खातिर तकनीकी का इस्तेमाल एक सुखद और सकारात्मक अनुभव है। शायद इसके बिना मैं वह सब न कर पाता, जो कर पाया। लेकिन इसका एक और भी मतलब है। इसके कारण हर वह सच सामने है, जिसका दिखना उतना जरूरी नहीं। हर हाथ में फोन तो है, भले पानी न हो। इस फोन ने चमक भी दिखाई है, विभेद की खाई भी बढ़ाई है। नतीजे सीधे सपाट हैं। उसी चमक को देख हमारे ग्रामीण गरीब बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर झुंड के झुंड शहरों और कस्बों की ओर पलायन कर रहे हैं और हर दिन एक नए मायाजाल में उलझते चले जा रहे हैं।

मेरे लिए सबसे ज्यादा चिंता का विषय है कि हम सब एक साथ नए तरीके से कैसे काम करें? हमारी प्रजातियों के लिए यह जरूरी है। जलवायु परिवर्तन, खाद्यान्न उत्पादन, बढ़ती जनसंख्या, दूसरी प्रजातियों की बर्बादी, संक्रामक रोग और महासागरों का अम्लीकरण जैसे तमाम महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। ये बताते हैं कि हम मानवता के विकास के सबसे बुरे दौर में हैं। हमारे पास अपने ग्रह को नष्ट करने की तकनीकी तो मौजूद है, पर हम वह नहीं तलाश पाए, जो ऐसा होने से बचा सके। संभव है, कुछ सौ वर्षों में हम नक्षत्रों के आसपास भी अपनी कॉलोनी बना और बसा ले जाएं, मगर फिलहाल हमारे पास एक ग्रह पृथ्वी है और सबसे बड़ी जरूरत इसे बचाने के लिए मिलकर काम करने की है।

ऐसा करने के लिए हमें तमाम देशों के अंदर और बाहर की सभी बाधाएं तोड़नी होंगी। ऐसे समय में, जब सिर्फ नौकरी ही नहीं, उद्योगों की संभावनाएं भी क्षीण हो रही हों, हमारी जिम्मेदारी है कि लोगों को नए विश्व के लिए तैयार करें। इसके लिए लोगों की आर्थिक मदद करनी होगी। किसी भी तरह से पलायन रोकना होगा। हम यह कर सकते हैं। मैं अपनी प्रजातियों के भविष्य को लेकर बहुत आशावादी हूं। लेकिन जरूरी होगा कि लंदन से लेकर हॉवर्ड, कैंब्रिज से लेकर हॉलीवुड तक के विद्वान अतीत से सबक लें।

साभार: द गार्जियन

स्टीफन हॉकिन्स, प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री(ये लेखक के अपने विचार हैं)

राष्ट्रीय सहारा

Date: 08-12-16

झाड़ दीजिए रपट की धूल

वर्तमान आपराधिक न्याय पण्राली, जो मूलतः व्यक्तिगत अपराधों से निपटने के लिए बनाई गई थी, माफिया की गतिविधियों से निपटने के लिए पर्याप्त नहीं है। आर्थिक अपराधों के संबंध में भी हमारे कानून के उपबंध कमजोर हैं।' रिसर्च एंड एनालिसिस विंग के अफसर ने कहा कि विदेशों में स्थित इस एजेंसी के कार्यालयों की वर्तमान क्षमता इतनी अधिक नहीं है कि वह अपनी गतिविधियों के क्षेत्र को व्यापक बना सके

काले धन की झाड़ी साफ करने की कोशिश जारी है। पर झाड़ी की जड़ में मट्ठा कब डाला जाएगा? जड़ खोदे बिना काले नोटों की झाड़ी फिर उग आएगी। वोहरा कमेटी ने भ्रष्टाचार,अपराध और आतंक के त्रिगुट की चर्चा की है। जड़ तो वही है। नीरा राडिया टेप प्रकरण के अनुसार उस त्रिगुट में कुछ अन्य तत्व भी जुड़ चुके हैं।भ्रष्टाचार को जड़ से मिटा देने से संबंधित प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का ताजा वायदा देशवासियों को संतोष और दिलासा देने वाला है। पर वायदा पूरा करने के सिलसिले में उन्हें वोहरा समिति की रपट पर से भी धूल झाड़नी पड़ेगी। वह रपट केंद्रीय सचिवालय में 1993 से पड़ी हुई है। 23 साल पहले वोहरा रपट आने के बाद तो इस बीच भ्रष्टाचार,अपराध और आतंक की जड़ें और भी गहरी हो चुकी हैं। इनसे कुछ अन्य अवांछित तत्व जुड़कर उन्हें बेहद ताकतवर बना रहे हैं। रपट में उन तत्वों की बेबाक चर्चा है। तत्कालीन गृह सचिव एनएन वोहरा के नेतृत्व में बनी समिति की रपट में सरकारी अफसरों, नेताओं और देश के माफिया गिरोहों के बीच के अपवित्र गठबंधन का जिक्र है। गठबंधन को तोड़ने के उपाय भी सुझाए गए हैं।

यह गठजोड़ अब अधिक खतरनाक स्तर पर पहुंच चुका है। माफिया तत्वों, आर्थिक क्षेत्र में सक्रिय लॉबी, तस्कर गिरोहों के साथ कतिपय प्रभावशाली नेताओं और अफसरों की सांठगाठ की विस्तृत चर्चा वोहरा समिति की रपट में है। पर 1993 और उसके बाद की किसी भी सरकार ने उसकी सिफारिश पर अमल करने का साहस नहीं दिखाया। याद रहे कि 1993 के बंबई बम विस्फोट की पृष्ठभूमि में ही वोहरा समिति का गठन किया गया था। श्रृंखलाबद्ध बम विस्फोट बाहर-भीतर के आतंकी और देशद्रोही तत्वों की आपसी सांठगांठ का परिणाम था। उसमें करीब 300 निदरेष लोगों की जानें गई थीं। पांच दिसम्बर, 1993 को वोहरा ने अपनी सनसनीखेज रपट गृह मंत्री को सौंपी थी।

रपट में कहा गया कि "इस देश में अपराधी गिरोह, हथियारबंद सेनाओं, नशीली दवा का व्यापार करने वाले माफिया गिरोहों, तस्कर गिरोहों, आर्थिक क्षेत्रों में सक्रिय लॉबी का तेजी से प्रसार हुआ है। इन लोगों ने विगत कुछ वर्षो के दौरान स्थानीय स्तर पर नौकरशाहों, सरकारी पदों पर आसीन लोगों, राज नेताओं, मीडिया से जुड़े व्यक्तियों और गैर सरकारी क्षेत्रों के महत्त्वपूर्ण पदों पर आसीन व्यक्तियों के साथ व्यापक संपर्क विकसित किए हैं। इनमें से कुछ सिंडिकेटों की विदेशी खुफिया एजेंसियों के साथ-साथ अन्य अंतरराष्ट्रीय संबंध भी हैं।' रपट में यह भी कहा गया है कि इस देश के कुछ बड़े प्रदेशों में इन गिरोहों को स्थानीय स्तर पर नेताओं और सरकारी पदों पर आसीन व्यक्तियों का संरक्षण हासिल है। उन्होंने हवाला लेन-देन, काला धन के परिसंचरण सहित विभिन्न आर्थिक कार्यकलापों को प्रदूषित कर दिया है।

उनकी समानांतर अर्थव्यवस्था के कारण देश के आर्थिक ढांचे को गंभीर क्षति पहुंची है। इन सिंडिकेटों ने सरकारी तंत्र को सभी स्तरों पर सफलतापूर्वक भ्रष्ट किया हुआ है। इन तत्वों ने जांच-पड़ताल और अभियोजन अभिकरणों को इस तरह प्रभावित किया हुआ है कि उन्हें अपना काम चलाने में अत्यंत कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।'रपट के अनुसार "कुछ माफिया तत्व नारकोटिक्स, ड्रग्स और हथियारों की तस्करी में संलिप्त हैं। चुनाव लड़ने जैसे कायरे में खर्च की जाने वाली राशि के मद्देनजर नेता भी इन तत्वों के चंगुल में आ गए हैं। रपट में आईबी के निदेशक की बातें दर्ज की गई हैं। उनके अनुसार "माफिया तंत्र ने वास्तव में एक समानांतर सरकार चलाकर राज्य तंत्र को संकट में धकेल दिया है।' "इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि इस प्रकार के संकट से प्रभावी रूप से निपटने के लिए एक संस्थान स्थापित किया जाए। इस समय ऐसा कोई तंत्र मौजूद नहीं है जो विशेषकर अपराध सिंडिकेट और माफिया के सरकारी तंत्र के साथ बने संबंधों के बारे में सूचनाएं एकत्रित और समेकित कर सके।' सीबीआई के निदेशक के अनुसार बड़े शहरों में संगठित अपराधी सिंडिकेट/माफिया की आय का प्रमुख साधन भू संपदा आदि है। वे भूमि और भवनों पर जबरन कब्जा कर लेते हैं। इस प्रकार से अर्जित धन शक्ति का इस्तेमाल नौकरशाहों और नेताओं के साथ संपर्क बनाने के लिए किया जाता है ताकि वे बेरोकटोक अपनी गतिविधियां चालू रख सकें।

भाड़े के हत्यारे इन संगठनों के अभिन्न अंग हैं। अपराधी गिरोहों, पुलिस, नौकरशाही और नेताओं के बीच सांठगांठ अब देश के विभिन्न हिस्सों में खुलकर सामने आ चुकी है। वर्तमान आपराधिक न्याय पण्राली, जो मूलत: व्यक्तिगत अपराधों से निपटने के लिए बनाई गई थी, माफिया की गतिविधियों से निपटने के लिए पर्याप्त नहीं है। आर्थिक अपराधों के संबंध में भी हमारे कानून के उपबंध कमजोर हैं।' रिसर्च एंड एनालिसिस विंग के अफसर ने कहा कि विदेशों में स्थित इस एजेंसी के कार्यालयों की वर्तमान क्षमता इतनी अधिक नहीं है कि वह अपनी गतिविधियों के क्षेत्र को व्यापक बना सके। 1993 के बाद देश के संसाधनों को लूटने वालों ने अपनी कार्यशैली व रणनीति में थोड़ा बदलाव जरूर किया है। मगर मूल तत्व वहीं हैं। इस बीच नये कानून व संस्थान भी बने हैं। पर वे अपर्याप्त हैं। समिति की मुख्य सलाह यह है कि गृह मंत्रालय के तहत एक नोडल एजेंसी तैयार हो जो देश में जो भी गलत काम हो रहे हैं, उसकी सूचना वह एजेंसी एकत्र करे।

ऐसी पक्की व्यवस्था भी की जाए ताकि सूचनाएं लीक नहीं हों। सावधानी बरतते हुए वोहरा ने इस रपट की सिर्फ तीन प्रतियां तैयार की थीं। यह काम उन्होंने खुद किया। ऐसा उन्होंने लीक होने के डर से किया। वोहरा ने रपट की प्रति तत्कालीन केंद्रीय गृह मंत्री और गृह राज्य मंत्री/आंतरिक सुरक्षा/को सौंपी। तीसरी प्रति वोहरा ने अपने पास रखी। वोहरा ने उस रपट में लिखा कि "गृह मंत्री द्वारा इस रपट के अवलोकन के बाद मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि वे आगे की कार्रवाई के लिए वित्त मंत्री, राज्य मंत्री/आंतरिक सुरक्षा और मेरे साथ विचार-विमर्श करने का कष्ट करें। उससे जो रास्ता निकलेगा, उसको अमल में लाने से पहले प्रधानमंत्री जी की मंजूरी प्राप्त की जा सकती है। पर जानकार लोग बताते हैं कि श्री वोहरा की इस सलाह को सरकार ने कुल मिलाकर नजरअंदाज ही कर दिया।

सुरेंद्र किशोर

Date: 08-12-16

जीवन के लिए बचाने ही होंगे

बीते दिनों एक समाचार मिला कि उत्तराखंड में मनुस्यारी से 33 किलोमीटर दूर पंचाचूली इलाके में तकरीब 15 से 20 किलोमीटर के दायरे में हिमालय के जंगल पिछले आठ दिनों से लगातार धधक रहे हैं। विडम्बना यह कि इस आग को बुझाने में वन विभाग पूरी तरह नाकाम रहा। नतीजन पंचाचूली पर्वतमाला पूरी तरह धुंध से ढक गई। इस आग से जहां बुरांश, खरसू, तिमसु और थुनेर जैसी वन संपदा और कस्तूरा, मोनाल

जैसे वन्यजीवों को नुकसान पहुंचा है, वहीं ग्लेशियरों पर भी खतरा मंडरा रहा है। वैसे भी जंगलों में आग लगने के ऐसे समाचार आये-दिन अखबारों की सुर्खियां बनते हैं।

आज समूची दुनिया में जंगल जिस तेजी से खत्म हो रहे हैं, उससे लगता है कि वह दिन दूर नहीं जब जंगलों के न रहने की स्थिति में धरती पर पाई जाने वाली बहुमूल्य जैव संपदा बहुत बड़ी तादाद में नष्ट हो जाएगी, जिसकी भरपाई असंभव होगी। करंट बॉयोलॉजी नामक शोध पत्रिका में प्रकाशित एक ताजा अध्ययन में खुलासा हुआ है कि दुनिया में यदि जंगलों के खात्मे की यही गति जारी रही तो 2100 तक समूची दुनिया से जंगलों का पूरी तरह सफाया हो जाएगा। आज भले हम यह दावा करें कि अभी भी दुनिया में कुल मिलाकर 301 लाख वर्ग किलोमीटर जंगल बचा है, जो पूरी दुनिया की धरती का 23 फीसद हिस्सा है। दुनिया के वैज्ञानिकों की जंगलों की तेजी से बेतहाशा खत्म होती रफ्तार को देखते हुए सर्वसम्मत राय है कि अब वह समय आ चुका है, जब यह धरती अपने जीवन में छठवीं बार बहुत बड़े पैमाने पर जैव संपदा के पूरी तरह खात्मे के कगार पर पहुंच चुकी है। उनके अनुसार इस बार केवल अंतर यह है कि इससे पहले जब-जब युग परिवर्तन हुआ, उस समय हमेशा ही इसके कारण प्राकृतिक ही रहे थे, लेकिन इस बार स्थिति पूरी तरह भिन्न है; क्योंकि बदले हालात में वर्तमान में इसका जो सबसे बड़ा और अहम कारण है, वह मानव निर्मित है।

गौरतलब है कि पहले जब-जब ऐसा हुआ तब प्रकृति की कुछ ही जैव संपदा का विनाश हुआ। लेकिन अब ऐसा नहीं है। पहले नष्ट हुई जैव संपदा के स्थान पर बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार वह नए रूप में विकसित हो जाती थी, जबकि अब विकास के नए माहौल में इनके विकसित हो पाने की संभावना न के बराबर ही दिखाई देती है। इससे इस बात की आशंका बलबती होती है कि जंगलों के खात्मे का सीधा-सा अर्थ है धरती की बहुत बड़ी तादाद में जैव संपदा पूरी तरह खत्म हो जाएगी। दुनिया में जिस तेजी से ग्लोबल वार्मिग का खतरा मंडरा रहा है, उसे मद्देनजर रखते हुए जिन जंगलों से हमें कुछ आशा की किरण दिखाई भी देती है, उनका तो पूरी तरह अस्तित्व ही खत्म हो जाएगा।वैज्ञानिकों के अनुसार समूची दुनिया के जंगल बड़ी तेजी से खत्म हो रहे हैं।

दुनिया के जंगलों का दसवां हिस्सा तो पिछले बीस सालों में ही खत्म हो चुका है, जो तकरीब 9.6 फीसद के आस-पास है। आज समूची दुनिया में ऐसे इलाके मिलना मुश्किल हैं, जो मानवीय दखलअंदाजी से पूरी तरह मुक्त हों। दरअसल, जंगलों के खात्मे के पीछे सबसे बड़ा कारण मानवीय स्वार्थ के चलते की जाने वाली उनकी बेतहाशा कटाई तो है ही। मगर इसके पीछे एक और अहम कारण है, वह है जंगलों में लगी आग, भले इसका कारण प्राकृतिक हो या मानव निर्मित। हर साल दुनिया में हजारों-लाखों हेक्टेयर जंगल आग की भेंट चढ़ जाते हैं। वह चाहे यूरोप हो, उत्तरी या दक्षिणी अमेरिका हो या अफ्रीका हो, एशिया हो या आस्ट्रेलिया। इसमें बहुत बड़ी तादाद में बेशकीमती जैव संपदा नष्ट हो जाती है। हमारे यहां भी जंगलों में आग लगने और जैव संपदा के खात्मे का सिलसिला बदस्तूर जारी है।

वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के आंकड़ों से जाहिर हो जाता है कि बीते तीस-पैंतीस बरसों में कुल कटे पेड़ों के तीन गुने तो दूर, वे अब तक उसके एक तिहाई पेड़ ही लगा पाए हैं। कानून बनने के बाद से अब तक पूरे देश में 20871 बांधों, सिंचाई, उद्योगों, रेल, सड़क निर्माण आदि के लिए बनी परियोजनाओं के लिए कुल मिलाकर 11.02 लाख हेक्टेयर से अधिक वन क्षेत्र विकास की समिधा बने जबकि इसके तीन गुने कुल 4.22 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में ही वनीकरण हुआ। सरकारी आंकड़ों को मानें तो देश के कुल भूभाग के 21.02 फीसद हिस्से पर जंगल हैं और यदि 2.82 फीसद ट्री कवर को जोड़ दे तो यह 23.84 फीसद होता है। आज यही हमारी वन संपदा है। यह हालत स्थिति की भयावहता की ओर इशारा करती है।

ज्ञानेन्द्र रावत